IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

कानपुर नगर एवं कानपूर देहात जनपद शिक्षा में समाजशास्त्री आधार पर, धर्म और शिक्षा , धर्म की आड़ में अत्याचार

अर्चना देवी,

डॉ. अजय कुमार यादव, डॉ. रामप्रताप सैनी

1. Research Scholar , Shri J.J.T.U Jhunjhunu (Raj.)

2. Associate professor Department of Education , C.C.S.P.G.C. Heonra Etawah (U.P)

3. Associate professor Department of Education, J.J.T.U. Jhunjhunu (Raj.)

सारांश

प्रस्तुत इस लेख में धर्म के विकास के सम्बन्ध में अधिक निश्चित कहना तो सम्भव नहीं; परन्तु यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मानव ने जब अमानवीय एवं अप्राकृतिक वस्तुओं एवं तथ्यों के सम्बन्ध में कुछ विश्वास और तर्कपूर्ण खोजों की प्राप्ति की तो इन प्राप्त विश्वासों और तर्कपूर्ण खोजों को धर्म की कल्पना से सम्बोधित किया। भारतीय मनीषियों ने धर्म को बहुत व्यापक माना है। धर्म वह है जो व्यक्तियों को मानवोचित कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिए प्रेरणा दे। अब धर्म को बहुत संकुचित दृष्टि से देखा जाने लगा है। स्थान और विशिष्ट संस्कृति के अनुसार लोगों के विश्वासों में अन्तर आ गया है। इसीलिए ये लोग धर्म की पृथक्-पृथक् कल्पना करते हैं। कहीं-कहीं तो धर्म के नाम पर अत्याचार हो रहे हैं। इसका कारण धर्मानुयायियों का अन्धविश्वासी होना है। यदि धर्म को वैज्ञानिक तथ्यों की कसौटी पर कसा जाय तो बहुत-से अन्धविश्वास दूर हो जाते हैं। 'धर्म' का तात्पर्य उस कर्त्तव्य के धारण करने से है जिसके निर्वाह करने पर मानव-जाति एवं प्राणी-वर्ग को सुख पहुँचता हो, समाज में शान्ति स्थापित रहती हो और विश्व-परिवार में सौहार्द, प्रेम एवं सहयोग की भावनायें जागृत होती हो। धर्मशास्त्रियों ने धर्म के लक्षण का वर्णन करते हुए स्पष्ट किया है कि धर्म वह है जो सदाचरण की प्रेरणा दे।

प्रस्तावना

आज मनुष्य वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर चल रहा है। इससे उसके अन्ध विश्वास, भूत-प्रेतादि से भय, भ्रम अवश्य कम होते जा रहे हैं, परन्तु उसे धर्म की आवश्यकता भी उतने ही वेग से अनुभव हो रही है। आज के वैज्ञानिक युग में मनुषा ने वायुयान द्वारा आकाश की यात्रा, जलयान द्वारा जल-यात्रा को सरल बना दिया है परन्तु उसने मनुष्य बनकर जीवन-यात्रा सफलतापूर्वक करने का उपाय खोजने में ढील की है। वास्तव में संसार में पृथ्वी पर रहकर जीवन-यात्रा सफल बनाने में धर्म का गहरा हाथ होता है। आज धर्म की आवश्यकता का अनुभव किया जाना स्वाभाविक है। सृष्टि के आदिकाल में भले ही मानव ने धर्म की आवश्यकता इसलिए अनुभव की हो कि सर्वशक्तिमान परमात्मा की शक्ति से, दैवी शक्तियों से और प्रकृति से टक्कर लेना उसके बस की बात नहीं थी। उसने प्रकृति सत्ता और ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार करके धर्म स्वीकार किया और विविध देवी-देवताओं की कल्पना करकेउसकी पूजा करना प्रारम्भ किया। आज धर्म मानव-समाज को ऐसी दृढ़ आधार शिला सकता है जिसके सहारे वह जीवन के भयंकर संघर्षों में सफलता प्राप्त करने में समर्थ हो सके। भग्नाशा, मानसिक तनाव, कलह और विचार की अनिश्चितता में धर्म ही मानव को शान्ति एवं मार्ग-दर्शन दे सकता है। आज का मानव भौतिकवादी होता जा रहा है। उसके अशान्त मन को शान्ति देने में तथा मानवीय मान्यताओं (Human Values) को स्वीकार करने में धर्म बहुत सहयोगी सिद्ध हो सकता है। यही कारण है। कि मानव संस्कृति में धर्म की आवश्यकता अनुभव की गयी है। भारत जैसे बहु धर्मानुयायी देश में प्रत्येक धर्मावलम्बी को अपने धर्म में आस्था रखने का अधिकार प्राप्त है। इस परम्परा से प्रत्येक धर्मावलम्बी आदर्श को ग्रहण करके सदाचार की ओर प्रेरित हो सकता है।

धर्म का मानव जीवन में घनिष्ठ सम्बन्ध है और मानव धर्म की आवश्यकता बहुत प्राचीन काल से अनुभव करता आ रहा है। धर्म व्यक्ति को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता रहा है। व्यक्ति धार्मिक आदशों के आधार पर चलकर अपने जीवन को चरित्रवान् बनाने का प्रयास करता आया है। धर्म व्यक्ति के व्यक्तित्व को आदर्श रूप देता है। इसलिए धर्म की बालकों की शिक्षा में बहुत बड़ी आवश्यकता अनुभव की गयी है। शिक्षाशास्त्री और धर्म प्रचारक मानवीय गुणों की उपलब्धि के लिए धर्माचरण का संकेत देते रहे हैं।

धर्म का शिक्षा में योग

(THE CONTRIBUTION OF RELIGION TO EDUCATION)

जब हम शिक्षा के इतिहास का अध्ययन करते हैं तो पता चलता है कि ब्राह्मणकालीन एवं बौद्धकालीन शिक्षा में धर्म को प्रमुख स्थान दिया गया था। उस समय धार्मिक ग्रन्थों के पठन-पाठन, धर्माचरण एवं धार्मिक विकास कार्यों के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था थी। शिक्षा-संस्थाओं का या तो धर्म-संघों से घनिष्ठ सम्बन्ध होता था अथवा शिक्षा-संस्थायें स्वयं धर्म-संस्था हुआ करती थीं। मध्यकालीन शिक्षा-संस्थाएँ मन्दिरों, मस्जिदों और विविध धर्म-संघों से सहसम्बन्धित हुआ करती थीं। उस समय पाठ्यक्रम में धर्म को प्रमुख स्थान दिया जाता था। शिक्षा का उद्देश्य भी धार्मिक आचरण करने योग्य सामर्थ्य उत्पन्न कराना था।

योरोप में प्राचीन काल में बालक-बालिकाओं की शिक्षा का सम्बन्ध शिक्षामठों (Monasteries) एवं चर्च से होता था। इन्हीं के संरक्षण में बालकों की शिक्षा चला करती ही धर्म को संकुचित दृष्टि से देखा जाने लगा हो परन्तु

शिक्षा का धर्म से बराबर सम्पर्क थी। मठाधीश एवं पादरी बालकों की शिक्षा-व्यवस्था के संचालक थे। मध्यकाल में भले बना रहा। इस समय चर्च के नियन्त्रण में चलने वाली कैथीड्रल (Cathedral) तथा मॉनस्टिक (Monastic) पाठशालायें बाल-बालिकाओं को शिक्षा दिया करती थीं।

भारत के शिक्षा-विकास में धर्म-संघों एवं धार्मिक संस्थाओं ने जितना शिक्षा प्रसार कार्य किया है उतना अन्य संघों ने नहीं किया। आज भी अनेक धार्मिक संस्थानों के संरक्षण में प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च स्तर तक के शिक्षालय कार्यरत है। आर्य समाज, ब्रह्म समाज, थ्योसोफिकल समाज, सनातन धर्म समाज, ईसाई मिशनरियाँ आदि जैसी धार्मिक संस्थायें बहुत-से विद्यालयों का संचालन कर रही हैं।अमेरिका और योरोप में तो आज भी चर्च बहुत सहयोग दे रहा है। वहाँ अनेक शिक्षा-संस्थायें ईसाई प्रचारकों के सहयोग से चल रही हैं।

धर्म की आड़ में अत्याचार

(EVIL PRACTICES IN THE NAME OF RELIGION)

धर्म किसी भी व्यक्ति को किसी भी दुराचरण के लिए प्रेरित नहीं करता, परन्तु कुछ अज्ञानी, अन्धविश्वासी लोग धर्म का संकीर्ण अर्थ लगाकर धर्म के नाम पर नाना प्रकार के अत्याचार किया करते हैं। मध्य युग में लोगों ने धर्म का वास्तविक अर्थ भुला दिया। धर्मान्धता और संकीर्ण दृष्टिकोण को ग्रहण करके लोगों ने धर्म के नाम पर बहुत अत्याचार किया। लोग इस युग में उन अत्याचारों से पीड़ित हो गये और उनकी धर्म में से आस्था उठ गयी। लोगों में यह भी धारणा घर करने लगी कि धर्म के नाम पर उनको मूर्ख बनाया जा रहा है। परिणाम यह हुआ कि योरोप में (Rousseau) और लॉक (Locke) जैसे दार्शनिकों ने धर्म का शिक्षा क्षेत्र में दिया जान ठीक नहीं समझा। उन्होंने धार्मिक शिक्षा का विरोध किया। उन्होंने धर्म का शिक्षा से सम्बन्ध वहीं तक उचित समझा, जहाँ तक तर्कबुद्धि और विवेक धर्म और शिक्षा के सम्बन्ध को स्थापित करने का अवसर दे सकता था। इन धर्म विरोधी लोगों ने जो धर्म के नाम पर अत्याचार करते थे, लोगों के मस्तिष्क में धर्म-संस्थाओं और धर्म-संघों का विरोध करने का भाव उत्पन्न कर दिया। लोगों ने यह भली प्रकार समझ लिया कि 'प्रचलित धर्म' धर्म नहीं वरन् ढकोसला है। उन्होंने वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाकर केवल उन्हीं धार्मिक तथ्यों को स्वीकार करने का प्रयास किया जो वैज्ञानिकता की कसौटी पर कसे जा सकते थे और खरे उतर सकते थे।

इस धर्म-घृणा के भाव ने लोगों को अत्यधिक भौतिक बना दिया। अब कुछ अपने आर्थिक, राजनैतिक तथा भौतिक जीवन की समस्याओं को अन्य ढंगों से हल लोग करना चाहते हैं। वे धर्म को इन समस्याओं के हल में कोई स्थान नहीं देना चाहते। वास्तव में दोनों ही बातें ठीक नहीं। न तो अन्धविश्वासी बनकर बिना विवेक के धर्मानुसरण करना चाहिए और न धर्म विरोधी बनकर पूर्ण अधार्मिक ही बनना चाहिए। शिक्षा के साथ-साथ तर्क और विवेक के आधार पर मानव धर्म को स्वीकार करना चाहिए और सदैव सदाचरण के लिए कटिबद्ध रहना चाहिए।

धर्म का वास्तविक अर्थ (The Real Meaning of Religion)

विविध महान् पुरुषों ने धर्म की पृथक्-पृथक् व्याख्यायें की हैं, परन्तु सब व्याख्याओं का सार मानव धर्म को ग्रहण करना ही है। कभी-कभी इन व्याख्याओं में फँसकर धर्म के सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न हो जाता है। कुछ लोग धर्म का संकुचित अर्थ लगाकर धर्म को केवल यज्ञ-हवन, प्रार्थना, सन्ध्या-उपासना, नमाज और दुआ करने तक ही सीमित रखते हैं। हमें यहाँ धर्म का वास्तविक अर्थ समझना होगा।मानव-कर्त्तव्य की संज्ञा भी दे सकते हैं। महाभारत में धर्म की व्याख्या प्रकार की गयी है:

"धारणाद धर्म इति आहुः
धर्मो धारयति प्रजाः।"(शान्ति पर्व महाभारत)

दर्शन शास्त्रों में धर्म का लक्षण सदाचार की प्रेरणा देना बताया गया है अर्थात् धर्म वह है जो व्यक्ति को मानव-कर्त्तव्यों का निर्वाह सदाचारपूर्वक इस प्रकार करे कि विश्व के मानव समाज और प्राणी वर्ग का उनसे कल्याण होता हो।

इस्लामी दर्शन में धर्म को मजहब कहा जाता है। इस धर्म के अनुसार मजहब (धर्म) का अर्थ आचार की शिक्षा देने के ढंग से है। इस मजहब के अनुसार नमाज, रोजा और हज, पड़ोसपन और लोक प्रेम को उत्पन्न करने के सुन्दर अवसर देते हैं। समाज सेवा (खिदमते खल्क) करना धर्म का अच्छा लक्षण है।

ईसाई धर्म (रिलीजन) के अनुसार, 'धर्म वह वस्तु है जो विभिन्न व्यक्तियों के प्रेम, सहानुभूति और पारस्परिक कर्तव्य एवं अधिकार के बन्धन में बाँधती है। लोककल्याण इस धर्म का लक्षण है।

लोगों को मत और धर्म में समानता जान पड़ती है, यह उचित नहीं। हमें धर्म की व्यापकता को समझने के लिए मत और धर्म में अन्तर समझना होगा। मत धर्म में विश्वास करने का एक ढंग है, जिसका सम्बन्ध एक विशिष्ट धारा के व्यक्तियों से होता है। एक धर्म को स्वीकार करने वाले बहुत-से मत हो सकते हैं। जैसे वैदिक धर्म (हिन्दू धर्म) को मानने वाले आर्य समाज, ब्रह्म समाज, सनातन धर्म-समाज, कबीर पंथी; नानक पंथी और राधास्वामी मत वाले; इस्लाम धर्म में शिया मत और सुन्नी मत वाले तथा ईसाई धर्म में कैथोलिक, प्रोटेस्टैण्ट, मेथडिस्ट आदि मत वाले समूह पाये जाते हैं। इस प्रकार कोई मत किसी धर्म से सम्बन्धित तो अवश्यक होता है; परन्तु वह किसी धर्म का अनुसरण करने की कोई एक विचारधारा होती जिसे कुछ व्यक्ति ही स्वीकार करते हैं।

धर्म को लोगों ने भले ही विविध दृष्टिकोणों से देखा हो, परन्तु सब यह अवश्य मानते हैं कि धर्म आत्मा के विकास और ज्ञान का साधन है, जिसका अनुसरण करके ही सुख और शान्ति मिल सकती है। सभी धर्मों ने एक परमात्मा (परम + आत्मा) की आस्था स्वीकार की है। यह परमात्मा सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान, अनन्त, निर्विकार आदि है। विश्व में व्याप्त 'सत्यम्', 'शिवम् सुन्दरम्' सब ईश्वर के ही स्वरूप हैं। सृष्टि में जो भी अच्छाई आती है, उसका उदगम यही परमात्मा है। यही शक्ति समस्त प्रकृति और जीवात्माओं पर नियन्त्रण करती है। धर्म ऐसा पथ है जिस पर चलकर पहले आत्मानुभूति (Self-realization) होती है और फिर उस परमात्मा का अन्तबोध होता है। इस प्रकार धर्म परम सुख, शान्ति और आनन्द की प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन है। व्यक्ति को इसे स्वीकार करना ही चाहिए।

इस्लाम धर्म की व्याख्या भी कम गम्भीर नहीं है। इस्लाम शब्द का विश्लेषण ही उसकी गम्भीरता को व्यक्त करता है। इस्लाम शब्द सत्य शब्द से बना है, जिसका अर्थ है शान्ति। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इस्लाम का तात्पर्य है ईश्वर के सम्मुख अपने को शान्तिपूर्वक अर्पण कर देना। इस धर्म के अनुसार व्यक्ति अपने अहम् भाव और अहंकार को भुलकर ईश्वर सत्ता को स्वीकार कर लेता है।लोग आपस में तभी बँध सकते हैं, जब वे एक-दूसरे के प्रति प्रेम, सहानुभूति पारस्परिक सौहार्द और स्वकर्त्तव्यपरायणता कूट-कूटकर भरे हों। इस प्रकार लोगों को सहानुभूतिपूर्ण, प्रेमपूर्ण सदाचरण की प्रेरणा देता है। जब लोग प्रेम और सहानुभूति के बन्धन में बँध जाते हैं, तो उनका अभिमान, अहंकार लुप्त हो जाता है।

क्रिश्चियनिटी (Christianity) का तात्पर्य भी वही है जो उपर्युक्त धर्म व्याख्या से स्पष्ट होता है। क्रिश्चियनिटी का उद्गम क्रिस्टोस (Christos) शब्द हुआ है। क्रिस्टोस का अर्थ है 'दैवी ज्ञान से सना हुआ (Bathed in Divines Wisdom) अर्थात् वह धर्म जो परम-आत्मा की शक्ति का बोध कराता हो और मानव कल्याण की प्रेरणा देता हो, क्रिश्चियनिटी है। यही व्यापक अर्थ वैदिक धर्म का भी है। वैदिक धर्म का अर्थ है-ज्ञान का धर्म (Religion of Knowledge) अर्थात् आत्मानुभूति अन्तर्बोध, विवेक एवं तर्क के आधार पर पूर्ण वैज्ञानिकता के साथ परम-आत्मा को पहचानना और उसकी सत्ता स्वीकार करना। यह धर्म मानव-कल्याण के ज्ञान का परिचय कराता है। यह सदाचार की प्रेरणा देकर प्राणी वर्ग के लिए सुख की कामना करता है। वैदिक धर्म को स्वीकार करने वाले दूसरे लोग इसे सनातन धर्म अर्थात आत्मा का धर्म (Religion of Humanity or Humanism) की संज्ञा दे सकते हैं। बौद्ध धर्म का तात्पर्य भी बुद्धि (ज्ञान) के अर्थ से है। इस प्रकार प्रत्येक धर्म मानव-कल्याण के लिए आवश्यक ज्ञान प्राप्ति और सदाचार की प्रेरणा प्रदान करता है।

उपर्युक्त विवेचन से हमें धर्म की महानता, धर्म की व्यापकता और आवश्यकता का बोध होता है। धर्म सदैव सत्यं शिवं और सुन्दरम् से ओतप्रोत होता है। यह हमे प्रेम, सहानुभूति, सौहार्द, बन्धुत्व और मानव-कल्याण के कार्य करने की प्रेरणा देता है। इसलिए इसे जीवन से सम्बन्धित करके सार्वभौमिक और शाश्वत् बनाया जाना सम्भव है।

शिक्षा एवं धर्म का सम्बन्ध

(THE RELATION BETWEEN EDUCATION AND RELIGION)

शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है, जिससे व्यक्ति मानक समाज के लिए कल्याणकारी बन सके। यही उद्देश्य धर्म का भी है। इस प्रकार शिक्षा और धर्म का पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध का भली प्रकार स्पष्टीकरण न होने से धर्म और शिक्षा में सह-सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता है। यही कारण है कि शिक्षा में धर्म का कोई स्थान नहीं दिया जा सका है। अमेरिका और योरोप में शिक्षा-विशेषज्ञों के एक वर्ग ने शिक्षा में धर्म का स्थान निर्धारित किया है और धर्मयुक्त शिक्षा देने की व्यवस्था की है। सन्डे स्कूल मूवमेन्ट (Sunday School Movement), रिलिजियस एजूकेशन मूवमेन्ट (Religious Education Movement) तथा करेक्टर एजूकेशन मूवमेन्ट (Character Education Movement) आदि आन्दोलन चलाकर धर्मयुक्त शिक्षा देने की व्यवस्था इन देशों की नवीन शिक्षा-प्रणाली है। अनैतिकता का स्रोत व्यक्ति का अधर्म है।

अतः भौतिकवाद से पुष्ट मानव भौतिकवाद से ऊबने लगा है और आध्यात्मवाद में सुख शान्ति की खोज करना चाहता है। अब शिक्षा-विशेषज्ञ धर्म-प्रधान नैतिक शिक्षा पर बल देने लगे हैं। इस विचारधारा लेकर कि शिक्षा और धर्म का सम्बन्ध स्थापित किया जाय इसके उपायों पर विचारकरना आवश्यक होगा। कुछ लोग जो आर्थिक और राजनीतिक विचारों के हैं. यह नहीं चाहते कि शिक्षा में धर्म को स्थान दिया जाय। ऐसे लोगों की दृष्टि में धार्मिक शिक्षा की आलोचना इस प्रकार की जाती है।

धार्मिक शिक्षा की आलोचनायें

(CRITICISM AGAINST RELIGIOUS EDUCATION)

धार्मिक शिक्षा का विरोध करने वाले व्यक्तियों का कथन है कि-

1. धर्म का अर्थ व्यापक है। उसका कार्य है कि वह व्यक्तियों में सदाचरण की भावना भरे और मानव-समाज में प्रेम तथा सहानुभूति द्वारा संगठन स्थापित करे. परन्तु धर्म के नाम पर लोगों ने बहुत-बहुत अत्याचार किये है। धर्म के नाम पर लोगों में बैर, ईर्ष्या, वैमनस्य और घृणा के भाव उत्पन्न हुए हैं। अतः ऐसे धर्म को विद्यालय में शिक्षा के माध्यम से फैलाना उपयुक्त नहीं होगा। इससे भलाई के स्थान पर बुराई पनपेगी। 2. धर्म का अनुसरण आत्मानुभूति द्वारा होता है। व्यक्तिगत धारणाओं में असमानता होने के कारण सभी की आत्मानुभूति पृथक्-पृथक् होगी। परम-आत्मा का अन्तर्बोध व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत अनुभूति के आधार पर करता है। अतः सामूहिक रूप से कक्षाओं के अन्दर धार्मिक शिक्षा देकर धर्म का ज्ञान देना ठीक नहीं होगा। 3. विद्यालयों में एक ही धर्म के अनुयायी बालक नहीं होते। विविध धर्मों के मानने वाले बालक विद्यालयों में पढ़ने आते हैं। अतः कोई एक धार्मिक शिक्षा देना उनके लिए ठीक नहीं होगा। किसी एक धर्म अथवा मत का प्रतिपादन करना दूसरे धर्मावलम्बी बालकों में घृणा, द्वेष और बैर के भाव पैदा करेगा। 4. किसी बात को सही रूप से जान लेने का अर्थ यह कदापि नहीं होता कि वह व्यक्ति उस बात को सही रूप में कर भी लेगा। ज्ञान के अनुरूप व्यवहार होना आवश्यक नहीं है। धर्म का ज्ञान कराने पर बालक उसके अनुरूप आचरण करेंगे ही यह आवश्यक नहीं है। 5. बालक तब मानसिक द्वन्द्व में फँस सकता है जब उसे धार्मिक शिक्षा देते समय यह जायेगा कि अनुशासन स्थापना में पाप-पुण्य, दैवी दण्ड और पुरस्कार का क्या स्थान है। इससे बालकों के मन में भ्रम उत्पन्न होगा तथा नैतिक विकास में बाधा उत्पन्न होगी। किसी विशिष्ट मत का प्रतिपादन करने से धर्म-कार्यों एवं सामाजिक मान्यताओं को बालकों के समक्ष निष्पक्ष रूप से नहीं रखा जा सकेगा। 6. विद्यालीय स्तर पर धर्म जैसे गूढ़ भाव को समझना कठिन होगा। एक सामान्य शिक्षक जिसने धर्म को भली प्रकार नहीं समझा है, धार्मिक शिक्षा देने में समर्थ नहीं होगा। धर्म की व्याख्या निष्पक्ष और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही की जा सकती है, परन्तु एक शिक्षक जो किसी एक धर्म का अनुयायी है, दूसरे धर्म की शिक्षा निष्पक्ष और वैज्ञानिक ढंग से नहीं दे सकता। बालकों के घनिष्ठ सम्पर्क में विषय अथवा कक्षा-अध्यापक ही आते है। एक धार्मिक शिक्षा देने वाला अध्यापक प्रत्येक बालक के व्यक्तिगत सम्पर्क में नहीं

आ पायेगा। इसके बालकों पर धर्म-शिक्षक के आचरण का प्रभाव नहीं पड़ेगा। केवल बालकों को सैद्धान्तिक जानकारी ही हो सकेगी। 7. कोई व्यक्ति धार्मिक शिक्षा पा लेने से ही सच्चरित्र नहीं बन सकता। सच्चरित्र बनने के लिए शिक्षा को व्यवहार में लाना बहुत आवश्यक है। विद्यालयों में केवल धर्म के उपदेश दिये जा सकते हैं

सन्दर्भ

1.रस्तोगी, कृष्ण गोपाल एवं मित्तल, एम्. एल. "भारतीय शिक्षा का विकासएवं समस्याए " रस्तोगी पब्लिकेशन्स,शिवाजी रोड,मेरठ (1999).

2.रस्तोगी के. जी. "भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याए " रस्तोगी पब्लिकेशन्स.

3.मदन मोहन " भारतीय शिक्षा का विकास और समस्याए " कैलाश प्रकाशन इलाहाबाद(1993-94)|

4.अग्निहोत्री रविन्द्र "भारतीय शिक्षा का इतिहास " रतन प्रकाशन मंदिर आगरा